आचार्यश्री की शब्द-साधना

– प्रो. वीरसागर जैन

आचार्य विद्यानन्द मुनिराज की शब्द-साधना उच्च कोटि की थी, वे सदा बहुत ही विवेकपूर्वक बोलते थे, उनका एक-एक शब्द बहुत ही नपा-तुला होता था | और उसमें भी प्रायः सर्वत्र आगम का ठोस आधार होता था | वे आगम छोड़कर एक भी शब्द बोलना पसंद नहीं करते थे | वे अपने सभी शिष्यों/ भक्तों/श्रोताओं को भी बारम्बार यही निर्देश/उपदेश देते थे कि वे सदा आगम के आधार से ही या आगम के अनुरूप ही बोलें, कभी भी आगम को छोड़कर एक हुरुफ़-पाई भी न बोलें | उनकी यह विशेषता हम सभी को अनुकरणीय है, अत: इसे यहाँ कतिपय प्रसंगों द्वारा संक्षेप में स्पष्ट किया जाता है |

वे अपना प्रवचन हमेशा 'महानुभाव' सम्बोधन से प्रारम्भ करते थे | जब उनसे पूछा कि आप यह क्या बोलते हैं तो उन्होंने भावपाहुड, रत्नकरंड आदि अनेक ग्रन्थों के ऐसे गाथा-श्लोक मुझे दिखाए जिनमें 'महानुभाव' शब्द का प्रयोग हुआ है और कहा कि देखो, हम मुनि हैं, हमारा कोई भाई-बहिन, माता-पिता आदि नहीं है, अत: हम ऐसा सम्बोधन नहीं कर सकते कि भाइयो, बहिनों, माताओं आदि, यदि करेंगे तो उससे हमें दोष लगेगा और आगम की आज्ञा का उल्लंघन होगा, अत: मैं तो यही आगमानुकुल सम्बोधन 'महानुभाव' बोलता हूँ| 'महानुभाव' का अर्थ होता है जिसके भाव महान हैं, विशुद्ध हैं | वैसे भी हम तो जिनवाणी सुनाते हैं और यह जिनवाणी वही सुन-समझ सकता है जो 'महानुभाव' हो, चाहे वह बाहर से कुछ भी हो- राजा, सेठ, नौकर, स्त्री,पुरुष आदि; उससे क्या ?

एक बार एक व्यक्ति ने उनके समक्ष बोला कि वह किस खेत की मूली है तो आचार्यश्री बोले- देखो, हम मूली खाते नहीं तो उसका उदाहरण भी क्यों देना ? मत दिया करो | मैंने देखा कि आचार्यश्री तो इस मुहावरे को भी कुछ बदलकर इस तरह बोलते थे कि- देखो भैया, बड़े-बड़े तीर्थंकर भी नहीं समझा सके, हम किस पेड़ के पत्ते हैं | तात्पर्य यही है कि हमें कभी अनुचित मुहावरा भी नहीं बोलना चाहिए | मैंने सुना है कि हमारे अनेक जैन बन्धु भी घर की मुर्गी दाल बराबर मुहावरे का प्रयोग करते हैं, परन्तु इससे मांसाहार का दोष लगता है, अत: हमें ऐसा कोई मुहावरा भी नहीं बोलना चाहिए |

एक बार एक व्यक्ति ने कहा कि आज मौसम खराब हो गया तो आचार्यश्री बोले- देखो, मौसम अच्छा हो गया, खराब हो गया - यह राग-द्वेष की भाषा है, इसे नहीं बोलना चाहिए, बोलना ही हो तो ऐसा बोल सकते हैं कि आज मौसम बदल गया | 'मौसम बदल गया' – कहना ज्ञान की भाषा है | ज्ञान की भाषा बोलो, राग-द्वेष की भाषा मत बोलो |

आचार्यश्री कभी भी किसी को यह नहीं कहते थे कि तुम मुझसे मिलने आओ, क्योंकि वे कहते थे कि इससे हमें भारी दोष लगता है, हम किसी को मिलने नहीं बुला सकते | हम मुनि हैं और स्वयं इर्या समिति पूर्वक पदविहार करते हैं | यदि हम किसी को बुलाएँगे तो वह कार गाड़ी आदि से आएगा और हमें भी उस हिंसा का भागी बनना पड़ेगा | सभी दिगम्बर साधुओं को सदा इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि हम समस्त आरम्भ-परिग्रह का नवकोटि से त्याग कर चुके हैं | आचार्यश्री एक बात ऐसी भी कहते थे कि देखो, यदि हम किसी व्यक्ति को ऐसा कहें

कि तुम मेरे लिए अभिषेक करके गंधोदक लाओ तो इससे भी हमें आरम्भ का महान दोष लगेगा, शास्त्र में ऐसा कहने वाले को प्रायश्चित्त का विधान है | इससे ज्ञात होता है कि आचार्यश्री की शब्द-साधना बहुत गम्भीर थी |

हम प्राय: देखते हैं कि जब मुनि विहार करते हैं तो उनके साथ के लोग राहगीरों से ऐसा कहते रहते हैं कि हटो हटो, परन्तु आचार्यश्री कभी भी किसी को ऐसा नहीं कहते थे कि हट जाओ और अपने भक्तों को भी ऐसा कहने को मना करते थे | कहते थे कि देखो, हमें स्वयं बचकर निकल जाना चाहिए, किसी को हटने को नहीं कहना चाहिए | यदि हमारे कहने से वह हटकर किसी चींटी आदि पर पैर रख दे तो हमें दोष लगेगा | यदि कोई तांगेवाला घोड़े को चाबुक मार दे तो हमें दोष लगेगा | यदि कोई घबराकर एक्सीडेंट कर दे तो भी हमें दोष लगेगा | अथवा ऐसा भी हो सकता है कि कोई व्यक्ति हमसे विवाद करने लग जाए कि मैं नहीं हटूंगा, सड़क पर मेरा अधिकार है, तुमने खरीद नहीं ली है, इत्यादि | इससे ज्ञात होता है कि आचार्यश्री कितना अधिक सोच-समझकर बोलते थे |

आचार्यश्री एक बात यह भी बारम्बार कहते रहते थे कि जिसप्रकार सीमा पर सैनिक के हाथ में सदैव शस्त्र रहता है, एक क्षण भी नहीं छूटता, यदि छूट जाए तो समझो वह गया काम से, उसीप्रकार साधु के हाथ/मुख में हमेशा शास्त्र रहना चाहिए, एक क्षण भी नहीं छूटना चाहिए, यदि छूट जाए तो समझो वह गया काम से | इससे ज्ञात होता है कि वे आगम से पूर्ण प्रतिबद्ध थे और एक-एक शब्द जिनागम के आलोक में ही बोलना पसंद करते थे |

आचार्यश्री के प्रवचनों की एक और बड़ी विशेषता यह थी कि वे हमेशा संक्षिप्त एवं सारगर्भित ही बोलते थे, कभी भी लम्बा चौड़ा नहीं बोलते थे, कहते थे कि भाषण हमेशा गन्ने जैसा होना चाहिए, बांस जैसा नहीं | बांस जैसा भाषण लम्बा होता है, पर उसमें बिलकुल रस नहीं होता, फांस ही फांस होती है; जबकि गन्ने जैसा भाषण छोटा होता है, पर उसमें कूट-कूट कर रस भरा रहता है, खूब चूसो फिर भी खत्म नहीं होता, थूकने के बाद भी मक्खी-चींटी को भोजन मिल जाता है |

आचार्यश्री कभी अपने विषय से भटकते भी नहीं थे, अपने विषय को क्रमबद्ध तरीके से सांगोपांग प्रस्तुत करते थे | वे कहते थे कि हमें हमेशा 'अनुवीचि भाषण' करना चाहिए, कभी भी अपने विषय से भटकना नहीं चाहिए, पूरी तरह उससे बंधा रहना चाहिए | 'अनुवीचि' का अर्थ होता है- अनु+वीचि = जलतरंग के अनुसार | जिस प्रकार जल की तरंगें सब एक के पीछे एक आती जाती हैं और किनारे तक लगती जाती हैं, उसी प्रकार वक्ता को अपना विषय क्रम-क्रम से आगे बढ़ाते हुए पूर्ण करना चाहिए |

आचार्यश्री की ऐसी शब्द-साधना को समझकर हम सब भी अपने जीवन में कुछ प्रेरणा ग्रहण करें – इसी मंगल भावना से मैं अपनी वाणी को विराम देता हूँ |